□ डा० गदाधर सिंह
विश्वविद्यालय प्रोफेसर
स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग
ह० या० जैन कालेज, आरा (बिहार)

जैन-स्तोत्र-साहित्य : एक विहंगम दृष्टि

ज्ञान, कर्म और उपासना—ये तीनों भारतीय साधना के सनातन मार्ग रहे हैं। ज्ञान हमें कर्म-अकर्म से परिचित करा शाश्वत लक्ष्य का बोध कराता है, कर्म उस लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करता है और उपासना के द्वारा हम उस लक्ष्य के पास बैठने तथा उससे तादात्म्य-भाव स्थापित करने में समर्थ होते हैं। इन तीनों के सम्मिलित रूप को ही भक्ति कहते हैं। स्तोत्र या स्तवन उसी भक्ति का एक अंग है।

स्तुतिर्नाम गुण कथनम् ।। —महिम्न-स्तोत्र की टीका (मधुसूदन सरस्वती)।

गुणों के कथन का नाम स्तुति है।

गुण कथन तो चारण या भाट भी करते हैं किन्तु वह स्तुति नहीं है। प्राकृत जन या नाशवान तत्त्वों की प्रशंसा स्तुति नहीं है, वरन् सत्य स्वरूप परमात्मा की प्रशंसा ही स्तुति के अन्तर्गत आयेगी।

सत्यमिद्वा उतं वयमिन्द्रं स्तवाम् नानृतम् ।।

—ऋग्वेद ८/५१/१२

हम उस भगवान् की स्तुति करें, असत्य पदार्थों की नहीं।

तमुष्टवाम् य इमा जनान् ।। —ऋग्वेद ८/८५/६

हम उस भगवान् की स्तुति करें जिसने यह सारी सृष्टि उत्पन्न की है।

इस स्तुति या प्रशंसा के पीछे हृदय की उदात्त वृत्ति श्रद्धा मिली रहती है—श्रद्धया सत्यमाप्यते (यजु० १९।३०)। श्रद्धा से ही सत्य स्वरूप परमात्मा प्राप्त होता है।

स्तुति का महत्व

'भक्ति रसायन' में लिखा गया है—

काम क्रोध भय स्नेह हर्ष शोक दयादयः ।
ताप काश्चित्तजतुनस्तच्छान्तौ कठिनं तु तत् ।।

चित्त को लाख के समान कहा जाता है। वह काम, क्रोध, भय, स्नेह, हर्ष, शोक आदि के संसर्ग में आते ही पिघल जाता है। जिस प्रकार पिघली हुई लाक्षा में रंग घोल देने पर, वह रंग लाक्षा के कठोर होने पर भी यथावत् रहता है, उसी प्रकार द्रवित चित्त में जिन संस्कारों का समावेश हो जाता है, वे संस्कार चित्त के भीतर अपना अक्षुण्ण स्थान बना लेते हैं। मनोविज्ञान की भाषा में इन्हें ही 'वासना' कहते हैं। भगवान् के दिव्य मंगल-विग्रह के दर्शन से, उनकी लीलाओं के श्रवण से तथा उनके स्वरूप का ध्यान करने से चित्त भी एक विशेष रूप में द्रवीभूत हो जाता है और इस प्रकार का द्रवीभाव व्यक्ति को लोकोत्तर आनन्द की दिशा में अभिप्रेरित करता है। स्तोत्र का महत्व इसी रूप में है।

स्तोत्र के माध्यम से भक्त आराध्य के गुणों का स्मरण करता है और उनके स्मरण से उसमें उन्हीं गुणों को अपनाने की प्रेरणा उत्पन्न होती है। आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि प्रार्थना से भक्त भगवान के गुणों को पा लेता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ।।

अर्थात् मोक्षमार्ग के नेता, कर्मरूपी पर्वतों का भेदन करने वाले वीतरागी, विश्व के तत्त्वों को जानने वाले सर्वज्ञ, आप्त (अर्हन्त) की भक्ति उन्हीं के गुणों को पाने के लिए करता हूँ।

जैनधर्म में भक्ति का स्वरूप

जैनधर्म आचार और ज्ञान-प्रधान धर्म है। इसमें जीव अपने कर्मों का कर्त्ता-भोक्ता स्वयं ही है। जैन-दर्शन में आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकृत की गई है। आत्म-स्वरूप की उपलब्धि की उच्चतम अवस्था ही मोक्ष है। जीव अपने बंधाबंध के लिए स्वयं उत्तरदायी है। इसी आधार पर कुछ लोगों का तर्क है कि यदि आत्म-पुरुषार्थ से ही जीव अपने कर्मों का क्षय कर सकता है तो उसे भगवत्-अनुग्रह की क्या आवश्यकता ?

एक तथ्य और है जिससे जैनधर्म को भक्ति-विरोधी प्रमाणित किया जाता है। भक्ति के मूल में राग है। ज्ञाता के हृदय में ज्ञेय के प्रति जब तक राग की भावना नहीं आती तब तक भक्ति का उद्भव नहीं हो सकता। भक्ति का अर्थ परात्म-विषयक अनुराग ही है—सा परानुरक्तिरीश्वरे (शांडिल्य सूत्र १/१/२)। जैन-दर्शन में किसी भी प्रकार के राग को आस्रव का कारण माना गया है। अतः इस तर्क के आधार पर भक्ति भी बन्धन का ही कारण सिद्ध होती है।

तोसरी बात यह है कि जब तक भक्ति का आलम्बन सगुण और साकार नहीं होता तब तक भक्ति सिद्ध नहीं हो सकती। यद्यपि जैनधर्म में भक्ति के आलम्बन अर्हत, सिद्ध आदि सगुण और साकार हैं किन्तु वीतरागी होने के कारण इन्हें भक्तों के योग-क्षेम से कोई प्रयोजन नहीं होता।

अतः उपर्युक्त परिस्थितियों में भक्ति की अनिवार्य भाव-भूमि के लिए जैन धर्म अनुर्वर है, ऐसा कहा जाता है।

यह सत्य है कि जैन-दर्शन के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति के लिए जीव को अपने पुरुषार्थ के अतिरिक्त किसी बाहरी सहायता की अनिवार्यता नहीं है किन्तु यह भी सत्य है कि जैसे दर्पण में मुँह देखने से मनुष्य अपने चेहरे की विकृति को यथावत् देख सकता है और देख लेने के उपरान्त उसे दूर करने का प्रयत्न कर सकता है, उसी प्रकार जैनधर्म मानता है कि परमात्मा के दर्शन से हम अपने मन-वचन की विकृति को दूर करके अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकते हैं। यद्यपि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है किन्तु परमात्मा की स्तुति उसे शुभ कर्म करने की प्रेरणा देती है। प्रार्थना से वह मल नष्ट हो जाता है और अन्तःकरण शुद्ध एवं स्वच्छ हो चमकने लगता है। कल्याण मन्दिर स्तोत्र (८) में कहा गया है—

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिली भवन्ति
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्यभाग,
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ।।

हे कर्म बन्ध विमुक्त जिनेश ! जैसे जंगली मयूरों के आते ही चन्दनगिरि के सुगन्धित चन्दन वृक्षों में लिपटे हुए भयंकर भुजंगों की दृढ़ कुण्डलियाँ तत्काल ढीली पड़ जाती हैं, वैसे ही जीव के मन-मन्दिर के उच्च सिंहासन पर आपके अधिष्ठित होते हो अष्ट कर्मों के बन्धन अनायास ही ढीले पड़ जाते हैं।

आचार्य समन्तभद्र जिन्हें 'आद्य स्तुतिकार' होने का गौरव प्राप्त है लिखते हैं—

स्वदोष शान्त्या विहितात्म शान्ति
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद् भवक्लेश भवोपशान्त्यै,
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ।।

—स्वयम्भू स्तोत्र ११

हे शान्तिजिन ! आपने अपने दोषों को शान्त करके आत्मशान्ति प्राप्त की है तथा जो आपकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरण में आये हैं, उन्हें भी आपने शान्ति प्रदान की है। अतः आप मेरे लिए भी संसार के दुःखों-भयों को शान्त करने में शरण है।

जहाँ तक दूसरे तर्क का प्रश्न है वहाँ यही कहना पर्याप्त है कि जो राग लौकिक अभ्युदय या प्रयोजन के लिए किया जाता है वही बन्धन का कारण होता है किन्तु इसके विपरीत जो राग वीतराग से किया जाता है, वह तो मुक्तिदायक होता है। गीता में इसी को व्यापक अर्थ में सकाम-निष्काम कर्म से समझाया गया है। सकाम कर्म बन्ध का कारण होता है और निष्काम कर्म मोक्ष का। जैन-भक्त अर्हन्त भगवान से कुछ पाने की कामना नहीं करता वरन् उसका भाव निष्काम होता है। कल्याण मन्दिर (४२) में कहा गया है—

> यद्यस्ति नाथ भवदङ्घ्रि सरोरुहणां,
> भक्तेः फलं किमपि सन्तत सञ्चितायाः।
> तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य ! भूयाः,
> स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ।।

हे नाथ! आपकी स्तुति कर मैं आपसे अन्य किसी फल की चाह नहीं करता, केवल यही चाहता हूँ कि भव-भवान्तरों में सदा आप ही मेरे स्वामी रहें। जिससे आपको अपना आदर्श बनाकर अपने को आपके समान बना सकूं।

दूसरी बात यह है कि 'पर' के प्रति राग-बन्धन का कारण होता है किन्तु 'आत्म' का अनुसन्धान तो मुक्ति का कारण है। परमात्मा 'पर' नहीं, 'स्व' है—एहु जु अप्पा सो परमप्पा (परमात्म प्रकाश, १४७)। अतः जिनेन्द्र का कीर्त्तन करने वाले अपनी आत्मा का ही कीर्त्तन करते हैं, आत्मा का ही श्रवण, मनन और निदिध्यासन करते हैं। उपनिषद् (वृहदा० ४/५—याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद) का भी यही मत है।

तीसरी आलोचना भगवान के वीतराग-भाव से सम्बन्धित है। क्या वीतराग की भक्ति या उपासना से दुःख या दुःख के कारणों का अभाव सम्भव है? जब वे स्वयं वीतरागी हैं तब किसी के सुख-दुःख से उनका क्या प्रयोजन? इसका उत्तर 'दशभक्त्यादि संग्रह' में दिया है कि यद्यपि भगवान फल देने में निस्पृह हैं किन्तु भक्त कल्पवृक्ष के समान उनके निमित्त से भक्ति का फल पा जाता है।

> यथा निश्चेतनाश्चिन्ता मणिकल्प महीरुहाः।
> कृत पुण्यानुसारेण तदभीष्टफलप्रदाः ।।
> तथार्हदादयश्चास्त रागद्वेष प्रवृत्तयः।
> भक्त भक्त्यनुसारेण स्वर्ग मोक्षफलप्रदाः ।।
> —दशभक्त्यादि संग्रह ३/४

जिस प्रकार चिन्तामणि तथा कल्पवृक्ष यद्यपि अचेतन हैं फिर भी वे पुण्यवान पुरुष को उसके अभीष्ट के अनुकूल फल देते हैं उसी प्रकार अर्हन्त या सिद्ध राग, द्वेष रहित होने पर भी भक्तों को उनकी भक्ति के अनुसार फल देते हैं। इस तथ्य की पुष्टि आचार्य समन्तभद्र के वचनों से भी होती है—

> न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे,
> न निंदया नाथ! विवान्तवैरे।
> तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः
> पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ।।

यद्यपि वीतराग देव को किसी की स्तुति, प्रशंसा या निन्दा से कोई प्रयोजन नहीं फिर भी उनके गुणों के स्मरण से भक्त का मन पवित्र हो जाता है।

अन्तिम शंका जो जैनधर्म को भक्ति-विरोधिनी सिद्ध करने के लिए की जाती है वह यह है कि जैन धर्म वस्तुतः ज्ञानप्रधान धर्म है। इसमें भक्ति के लिये कोई स्थान नहीं हो सकता। वस्तुतः भारतीय धर्म-साधना में ज्ञान और भक्ति को एक दूसरे से पृथक् करके नहीं देखा गया है क्योंकि दोनों के मूल में श्रद्धा है। श्रद्धावां लभते ज्ञानम्—यह गीता का मत है। भक्ति की जड़ में तो श्रद्धा है ही। आचार्य कुन्दकुन्द ने भक्ति से ज्ञान-प्राप्ति की प्रार्थना भगवान से की है—

> इमघायकम्म मुक्को अठारह दोस वज्जियो सयलो
> तिहुवण भवण पदीवो देउ मम उत्तमं बोहिं ।।
> —भावपाहुड १५२वीं गाथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि ज्ञान बुद्धि का विषय है फिर भी हृदय का भाव-बोध देकर ही सन्तों ने उसे स्वीकार किया है। निर्गुणियां सन्तों ने भक्ति की आधार-शिला पर ही अपनी साधना का प्रासाद निर्मित किया है।

ज्ञान को भक्ति का आलम्बन स्वीकार करने में सबसे बड़ी बाधा यह बताई जाती है कि भक्ति द्वैत बुद्धि पर आधारित होती है किन्तु आत्म-साक्षात्कार के उपरान्त सभी प्रकार की द्वैतबुद्धि या सभी प्रकार के भेद नष्ट हो जाते हैं। फिर वहाँ भक्ति की कामना ही कैसे हो सकती है ?

आद्य शंकराचार्य ने 'त्रिपुर सुन्दरी रहस्य (ज्ञान खण्ड) में इस पर विचार किया है। उनका कहना है कि यह सत्य है कि उस समय अभेदज्ञान हो जाता है किन्तु भक्त आहार्य ज्ञान द्वारा भेद की कल्पना कर लेता है। इस प्रकार की भेद-बुद्धि बन्धन का कारण नहीं होती बल्कि सैकड़ों मुक्तियों से भी बढ़कर आनन्दप्रद होती है। दूसरी बात यह है कि आत्मस्वरूप का ज्ञान होने के पूर्व द्वैतभाव बन्धन का कारण होता है किन्तु विज्ञान के बाद भेद-मोह के निवृत्त होने पर भक्ति के लिए भावित द्वैत अद्वैत से भी उत्तम है।

यही कारण है कि यद्यपि जैनधर्म ज्ञान-प्रधान है किन्तु भक्तिशून्य नहीं है। जैन भक्तों, कवियों एवं दार्शनिकों ने विपुल परिमाण में स्तोत्र-ग्रन्थों की रचना की है। ये स्तोत्र अर्हन्त, गुरु, सिद्ध, पंच परमेष्ठि आदि से सम्बन्धित हैं।

इन स्तोत्रों में निम्न तथ्यों की सर्वांगपूर्ण विवेचना हुई है—

१. आराध्य के स्वरूप की सौंदर्यपूर्ण व्यंजना
२. आराध्य की लीलाओं का गान
३. आराध्य के समक्ष आत्म-निवेदन तथा लौकिक-पारलौकिक फल-प्राप्ति की कामना
४. दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण
५. काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन

जैनस्तोत्र-परम्परा

जैन स्तोत्र-परम्परा प्रारम्भ में स्तोत्र और स्तव के बीच भेद करती थी। शान्तिसूरि ने 'स्तव' को संस्कृत में तथा 'स्तोत्र' को प्राकृत में निर्मित माना है।

आचार्य नेमिचन्द के गोम्मटसार कर्मकाण्ड प्रकरण में कहा गया है कि 'स्तव' में वस्तु के सर्वांग का और स्तुति में एक अंग का विवेचन विस्तार या संक्षेप से रहता है। वस्तुतः ये भेद प्रारम्भिक अवस्था में कुछ दिनों तक भले रहे हों किन्तु बाद में यह अन्तर समाप्त हो गया और दोनों एकार्थवाची हो गए।

प्राकृत-स्तोत्र-साहित्य

जैन-साहित्य में स्तोत्र-परम्परा मूल आगमों से ही प्रारम्भ होती है। आगमों में तीर्थंकरों की स्तुति सुन्दर एवं आलंकारिक शैली में की गयी है और देवों द्वारा १०८ पद्यों में स्तुति करने का निर्देश दिया गया है। प्राकृत स्तोत्रों में गौतम गणधर का 'जयतिहुअण स्तोत्र'[1] सबसे अधिक प्राचीन है। भगवान महावीर के समवशरण में प्रविष्ट होते समय गौतम ने इसी स्तोत्र से उनकी अभ्यर्थना की थी।

आचार्य कुन्दकुन्द ने चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति में 'तित्थयर सुदि' की रचना की थी जिसे श्वेताम्बर समाज में 'लोगस्स सुत्त' कहते हैं।

भयहर स्तोत्र[2] मानतुंग सूरि विरचित है। इसके २१ पद्यों में भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति

---

१ प्रकाशक—जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम
२ जन स्तोत्र संदोह (द्वितीय भाग), चतुरविजय सम्पादित, अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदित की गई है। मानतुंग का समय विक्रम की सातवीं शताब्दी है।

उवसग्गहर स्तोत्र[1] भद्रबाहु की रचना है। ये भद्रबाहु श्रुत केवली भद्रबाहु से भिन्न हैं। इनका समय विक्रम की छठी शताब्दी है। इसमें कुल २० गाथाएँ हैं। इसमें भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति है। यह स्तोत्र इतना लोकप्रिय है कि अनेक भौतिक रोगों के उपचार में इसका प्रयोग किया जाता है।

ऋषभ पञ्चाशिका[2] के रचयिता धनपाल (१० वीं शती) हैं। इसमें कुल ५० पद्य हैं जिसके प्रारम्भ के २० पद्यों में भगवान ऋषभ के जीवन की गाथाएँ हैं और शेष ३० में उनकी प्रशंसा की गयी है।

महावीर स्तोत्र[3]—इसके रचयिता अभयदेव सूरि हैं। इसमें २२ पद्य हैं।

पंचकल्याणक स्तोत्र—जिनवल्लभ सूरि (१२ वीं शती) ने इसकी की है। इसमें कुल २६ पद्य हैं। इस पर कई टीकाएँ लिखी गयी हैं।

चतुर्विशति जिनकल्याणकल्प और अम्बिकादेवी कल्प[4]—यह जिनप्रभ सूरि (१४ वीं शताब्दी) रचित है। सूरिजी का स्थान जैन स्तोत्रकारों में बहुत ऊँचा है। आपने ७०० स्तोत्रों की रचना की थी किन्तु अभी आपके ७० स्तोत्र ही उपलब्ध हैं। इन स्तोत्रों में यमक, श्लेष, चित्र तथा विविध छन्दों का चमत्कार देखा जा सकता है।

अजित संतिथय[5]—यह नंदिषेण रचित है (९ वीं शताब्दी)। इसमें भगवान अजितनाथ एवं शांतिनाथ की सम्मिलित प्रार्थना है। इस स्तोत्र के अनुकरण पर १२ वीं शती में जयवल्लभ ने 'अजित शान्ति स्तोत्र' और वीरनन्दि ने 'अजिय संतिथय' स्तोत्र की रचना की।

शाश्वत चैत्यस्तव[6]—इसकी रचना देवेन्द्रसूरि ने की है। इनका समय १३ वीं शताब्दी है। इसकी २४ गाथाओं में श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या और उनकी भक्ति प्रदर्शित है।

निर्वाणकाण्ड—यह प्राकृत का प्राचीन स्तोत्र है। इसमें कुल २१ गाथाएँ हैं। जैनों के दिगम्बर सम्प्रदाय में इसकी बहुत मान्यता है। जिन-जिन स्थानों पर जैन तीर्थंकरों ने निर्वाण प्राप्त किया उनकी प्रार्थना इसमें हैं। एक तरह से इसे जैन तीर्थ स्थानों का इतिहास करना चाहिए।

लब्धजित शान्तिस्तवन[7]—इसकी रचना अभयदेवसूरि के शिष्य जिनवल्लभ सूरि द्वारा विक्रम की बारहवीं शती में हुई। इस स्तोत्र पर धर्मतिलक मुनि ने सं. १३२२ वि. में वृत्ति लिखी है। इसमें कुल १७ पद्य हैं। कविता बड़ी मनोरम एवं लालित्यपूर्ण है।

निजात्माष्टकम्[8]—इसके रचयिता 'परमात्मप्रकाश' के प्रसिद्ध रचयिता योगेन्द्रदेब हैं। इसमें कुल आठ पद्य हैं। यह स्तोत्र दार्शनिक भावधारा से ओतप्रोत है।

---

१ साराभाई मणिलाल नबाब द्वारा प्रकाशित 'प्राचीन साहित्य और ग्रन्थावलि' में संग्रहीत सन् १९३२ ई.

२ काव्यमाला सप्तम गुच्छक—पं. दुर्गाप्रसाद और वासुदेव लक्ष्मण सम्पादित सन् १९२६ ई०

३ जैन स्तोत्र संदोह (प्रथम भाग), पृ. १९७-९९

४ मुनि जिनविजय सम्पादित विविध तीर्थकल्प, सिंघी जैन ज्ञानपीठ, शान्ति निकेतन सं. १९९० वि.

५-६ प्राचीन साहित्य और ग्रन्थावलि में संग्रहीत, सन् १९३२ ई.

७ वैराग्य शतकादि ग्रन्थ पञ्चकम् में पृ. ५० पर; देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फंड द्वारा सूरत से सन् १९४१ में प्रकाशित।

८ 'सिद्धान्तसारादि संग्रह' में संकलित, प्रकाशक—दि. जैन ग्रन्थमाला बम्बई वि. सं. १९०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरहंत स्तवनम्[1]—इसके रचयिता समन्तभद्र हैं जो सम्भवतः प्रसिद्ध समन्तभद्र से भिन्न हैं। इसका कलेवर छोटा है किन्तु काव्यगुण दृष्टि से इसका विशिष्ट महत्व है।

इन स्तोत्रों के अतिरिक्त प्राकृत में और भी अनेक स्तोत्र लिखे गए हैं जिनमें मानतुँग का भयहर स्तोत्र, जिनप्रभसूरि का पासनाह लघुथव, धर्मघोषकृत इसिमंडल थोत्त, देवेन्द्रसूरि कृत चत्तारि-अट्ठदसथव आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

संस्कृत स्तोत्र—जैन भक्तों ने प्राकृत के अतिरिक्त संस्कृत, अपभ्रंश एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं में विपुल परिमाण में स्तोत्र-ग्रंथों की रचना की है। साधारणतः संस्कृत पद्यों का निर्माण छन्दशास्त्र में उल्लिखित छन्दों में ही किया जाता है किन्तु जैन कवियों की यह विशेषता है कि उन्होंने लोकरुचि को ध्यान में रखकर विविध राग-रागिनियों एवं देशियों का उपयोग अपने स्तोत्रों में किया है। गुजरात एवं राजस्थान के सैकड़ों लोकगीत जो अब विस्मृति के गर्भ में विलीन हो चुके हैं वे पूरे-के-पूरे जैन कवियों द्वारा रचित रासों, ग्रन्थों एवं स्तोत्रों में सुरक्षित हैं। इस दृष्टि से इनके उपकार को साहित्य-संसार भूल नहीं सकता।

१. **स्वयंभू स्तोत्र**—संस्कृत में आचार्य समन्तभद्र एवं सिद्धसेन दिवाकर आद्य स्तुतिकार माने जाते हैं। आचार्य समन्तभद्र का स्वयम्भू स्तोत्र प्रसिद्ध है जिसका अनुवाद हिन्दी के अनेक जैन कवियों ने किया है। इसके अतिरिक्त इनके कुछ अन्य स्तोत्र भी प्रसिद्ध हैं। जैसे देवागम स्तोत्र, जिनशतक आदि।

२. **कल्याण मन्दिर स्तोत्र**—यह आचार्य सिद्धसेन दिवाकर द्वारा रचित है। इसमें कुल ४४ पद्य हैं। इस स्तोत्र की मान्यता जैनों के सभी सम्प्रदायों में है। हिन्दी के जैन कवियों ने इसका भी अनुवाद किया है। इनके द्वारा रचित एक और स्तोत्र है—द्वात्रिंशिका स्तोत्र। इसमें भगवान महावीर की स्तुति है।

३. **आचार्य देवनन्दि पूज्यपाद रचित स्तोत्र**—इन्होंने सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, तीर्थंकरभक्ति आदि से सम्बन्धित बारह स्तोत्रों की रचना की है जो 'दसभक्ति' नामक प्रकाशित ग्रन्थ में संकलित है।

४. **पात्रकेशरी स्तोत्र**—इसके रचयिता विद्यानन्दि हैं। इसके ५० पद्यों में भगवान महावीर की स्तुति की गई है।

५. **भक्तामर स्तोत्र**—इस स्तोत्र का सम्मान जैनधर्म में बहुत अधिक है। इसके रचयिता आचार्य मानतुँग हैं। इसमें कुल ४८ श्लोक हैं। इसका अनुवाद हिन्दी और अंग्रेजी में भी हुआ है।

६. **चतुर्विशति जिन स्तोत्र**—यह बप्पभट्टि (सन् ७४८-८३८ ई०) का लिखा हुआ है। इसमें ९६ पद्य हैं। किंवदन्ती है कि रचयिता ने कन्नौज के राजा यशोवर्म्मा के पुत्र अमरराज को जैनधर्म में दीक्षित किया था। इनके द्वारा रचित एक 'सरस्वती स्तोत्र' भी मिलता है।

७. **शोभन स्तोत्र**—शोभन कवि लिखित होने के कारण इसे 'शोभन स्तोत्र' कहते हैं। इनका समय विक्रम की दसवीं शती है। इसका शब्द-चमत्कार दर्शनीय है। कवि के भाई धनपाल ने इसकी टीका लिखी है।

८. **स्तुति चतुर्विशतिका**—इसके रचयिता सुन्दरगणि हैं जो अकबर के प्रबोधक खरतरगच्छाचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि के शिष्य हर्षविमल के शिष्य थे। इसमें १३ प्रकार के छन्द हैं। इसमें यमक की छटा दर्शनीय है। इसकी प्रत्येक स्तुति के चार पदों में प्रथम में किसी एक तीर्थंकर की स्तुति, दूसरे में सर्व जिनों की, तृतीय में जिन प्रवचन और चौथे में शासन-सेवक देवों का स्मरण किया गया है।

---

१ अनेकान्त वर्ष १८, किरण ३ में प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी प्रेरणा से रचित कुछ अन्य रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। जैसे मेरुविजय की जिनानन्द स्तुति, चतुर्विंशतिका, यशोविजय उपाध्याय की ऐन्द्रस्तुति चतुर्विंशतिका, हेमविजय रचित चतुर्विंशतिका आदि।

९. **विषापहार स्तोत्र**—इसके रचयिता धनंजय (८-९वीं शती) हैं। ऐसी मान्यता है कि इसके पाठ से सर्प का विष दूर हो जाता है।

१०. **वादिराजसूरि के स्तोत्र**—'एकीभावस्तोत्र', 'ज्ञानलोचन स्तोत्र' और 'अध्यात्माष्टक'—ये तीन स्तोत्र प्रसिद्ध हैं। 'एकीभाव स्तोत्र' का अनुवाद हिन्दी के अनेक जैन कवियों ने किया है।

११. **आचार्यहेमचन्द्र के स्तोत्र**—आचार्यहेमचन्द्र ने कुमारपाल की प्रार्थना पर 'वीतरागस्तोत्र' की रचना की। इसके बीस भाग हैं और प्रत्येक भाग में आठ या नव स्तोत्र हैं। भाषा बड़ी कवित्वमयी है। इनके रचे दो और स्तोत्र हैं—महावीर स्तोत्र और महादेव स्तोत्र।

इनके अतिरिक्त और भी स्तोत्रकार हुए हैं जिन्होंने बड़ी ललित पदावली में अपने आराध्यों की भक्ति में स्तोत्र ग्रन्थों का प्रणयन किया है। १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जिनरत्नसूरि, अभयतिलक, देवमूर्ति, जिनचन्द्रसूरि एवं उत्तरार्द्ध में जिनकुशल सूरि, जिनप्रभसूरि, तरुणप्रभसूरि, लब्धि निधान, जिनपद्मसूरि, राजेशखराचार्य आदि स्तोत्रकर्ता हुए हैं।

१५ वीं सदी में जिनलब्धसूरि, लोकहिताचार्य, भुवनहिताचार्य, विनयप्रभ, मेरुनन्दन, जिनराज सूरि, जयसागर, कीर्ति रत्नसूरि आदि स्तोत्रकर्ता हुए।

१६ वीं शती में क्षेमराज, शिवसुन्दर, साधु सोम आदि; १७ वीं शती में जिनचन्द्रसूरि, समयराज, सूरचन्द्र, पद्मराज, समय सुन्दर, उपाध्याय गुणविजय, सहजकीर्त्ति, जीव वल्लभ आदि। १८ वीं शती में धर्मवर्द्धन, ज्ञानतिलक, लक्ष्मीवल्लभ आदि; १९वीं शती में रामविजय, क्षमाकल्याण आदि स्तोत्रकार हुए हैं।

अगरचन्द नाहटा ने पुण्यशील रचित 'चतुर्विंशति जिनेन्द्र स्तवनानि' की भूमिका में अनेक स्तोत्र ग्रन्थों की सूचना दी है।

'Ancient Jain names' नामक एक पुस्तक का सम्पादन Charlottle Krause नामक एक जर्मन विद्वान द्वारा हुआ है जो 'उज्जैन सिन्धिया ऑरियन्टल इन्स्टीट्यूट' द्वारा सन् १९५२ ई० में प्रकाशित हो चुका है। इसमें आठ स्तोत्र संग्रहीत है जो भाषा और भाव, दोनों दृष्टियों से उत्तम हैं।

अपभ्रंश स्तोत्र

अपभ्रंश भाषा में भी जैन भक्तों ने कुछ स्तोत्रों की रचना की है किन्तु इनकी संख्या संस्कृत एवं प्राकृत की तुलना में अत्यल्प है। काव्य के प्रसंग के भीतर लिखे गए कुछ स्तोत्र भाषा और भाव की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं किन्तु स्वतन्त्र रूप में लिखे गए स्तोत्र काव्य गुण की दृष्टि से बहुत महत्व नहीं रखते।

स्वयम्भू के 'पउमचरिउ' एवं पुष्पदन्त के महापुराण में जिनदेवता की स्तुति बड़े भावपूर्ण शब्दों में की गयी है।

धनपाल (११ वीं शती) ने भगवान महावीर की प्रशंसा में 'सत्पुरीय महावीर उत्साह' स्तोत्र की रचना काव्यमयी भाषा में की है। १३ वीं शती के जिनप्रभ सूरि ने कुछ स्तोत्र ग्रन्थों की रचना की है जिनमें प्रसिद्ध है—जिनजन्ममहः स्तोत्रम्; जिन जन्माभिषेक, जिन महिमा, मुनिसुव्रत स्तोत्रम् आदि। इनका काल विक्रम की १३ वीं शताब्दी है। श्री धर्मघोष सूरि (सं. १३०२–५७ वि.) ने २७ पद्यों में 'महावीर कलश' की रचना की है। महाकवि रइधू न आत्म सम्बोधन, दश लक्षण जयमाल और संबोध पंचाशिका स्तोत्र की रचना अपभ्रंश में की है। गणि महिमासागर ने 'अरहंत चौपई' नामक स्तोत्र का प्रणयन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा संपादित राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची में भी बहुत से स्तोत्र-ग्रन्थों की नामाबलि मिल सकती है। 'स्तवन' ग्रन्थों की विस्तृत सूची डा० प्रेमसागर जैन रचित 'जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि' में उपलब्ध है।

हिन्दी जैन-स्तोत्र-साहित्य

हिन्दी में स्तोत्र-साहित्य का ग्रथन मौलिक रूप में नहीं हुआ है। अपनी लोकप्रियता एवं काव्य-सम्पदा के कारण पंचस्तोत्रों—'भक्तामर', 'कल्याण मन्दिर', 'विषापहार', 'एकीभाव' और चतुर्विंशति स्तवन' ने हिन्दी जैन कवियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है और फलस्वरूप इनके बीसियों पद्यानुवाद प्रस्तुत किये हैं। इन अनुवादों में यद्यपि कवियों ने अपनी मौलिक प्रतिभा का उपयोग कर इन्हें रस-संवेद्य बनाने की चेष्टा की है, किन्तु, इतना होते हुए भी एक भी अनुवाद ऐसा नहीं हुआ है जो मूल ग्रन्थ की समकक्षता प्राप्त कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि एक ही कृति के अनेक अनुवाद भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। इन अनूदित स्तोत्रों के अतिरिक्त कुछ मौलिक स्तोत्र भी हिन्दी के जैन कवियों द्वारा प्रणीत हुए हैं। इन स्तोत्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) विनती (ख) स्तुति (ग) प्रार्थना। इन स्तोत्रों की रचना करने वालों में कुछ प्रमुख हैं—

१. विनयप्रभ—इनकी पाँच स्तुतियाँ प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक स्तुति में २०–३० के लगभग पद्य हैं। 'सीमन्धर स्वामि स्तवन' को भी इन्हीं की रचना माना गया है।

२. मेरुनन्दन उपाध्याय (सं. १४१५)—इनके दो स्तवन 'अजित शान्ति स्तवन' और 'सीमन्धर जिन स्तवनम्' प्राप्त हैं।

३. उपाध्यय जयसागर (सं. १४०८–९५)—ये संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान थे। प्राकृत में उनका 'उवसग्गहर स्तोत्र वृत्ति' प्रसिद्ध है।

प्राचीन हिन्दी में इन्होंने 'चतुर्विंशति जिन-स्तुति', 'स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन', 'विरहमान जिन स्तवन' आदि की रचना की है। इनके अतिरिक्त 'जिनकलशसूरिचतुष्पदी' में सूरिजिनकुशल की महिमा का इन्होंने गान किया है।

४. श्री पद्मतिलक (१५वीं शती का उत्तरार्द्ध)—इनके द्वारा रचित 'गर्भ विचार स्तोत्र' प्रसिद्ध है। इस स्तोत्र ग्रन्थ में गर्भवास के दुःखों के वर्णन की पृष्ठभूमि में इससे छुटकारा दिलाने की प्रार्थना भगवान ऋषभनाथ से की गयी है।

५. विनयप्रभ उपाध्याय (सं० १५१२)—इन्होंने अनेक स्तुतियाँ लिखी हैं जिनमें 'सीमन्धर स्वामि स्तवन' प्रसिद्ध है।

६. अभयदेव (सं० १६२६)—इनके 'थंभण पार्श्वनाथ स्तवन' में स्तंभनपुर में विद्यमान भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा की प्रार्थना है।

७. गणिक्षतिरंग— इनका 'खैराबाद पार्श्व जिन स्तवन' खैराबाद स्थित भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा को लक्ष्य कर लिखा गया है।

८. ब्रह्मजिनदास—ये संस्कृत, प्राकृत एवं देश्य-भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे। संस्कृत में आपने अनेक पूजाएँ लिखी हैं। हिन्दी में इन्होंने 'कथा कोष संग्रह' लिखा जिसमें 'पंचपरमेष्ठी गुण वर्णन' संगृहीत है। इसमें पंचपरमेष्ठियों की प्रार्थना की गयी है।

९. ठकुरसी—सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवियों में इनकी गणना की जाती है। अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त स्तोत्र से सम्बन्धित इनकी दो रचनाएँ प्राप्त हुई हैं—चिन्तामणि जयमाल और सीमंधर स्तवन।

१० पद्मनन्दि—इनके दो स्तोत्र ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं—देवतास्तुति तथा परमात्मराज-स्तवन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. भट्टारक शुभचन्द (सं० १५७३ वि०)—इनकी लिखी हुई ४० से अधिक रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें निम्नलिखित स्तोत्र प्रसिद्ध हैं—(१) चतुर्विंशति स्तुति, (२) अष्टाह्निका गीत, (३) महावीर छन्द, (४) विजयकीर्ति छन्द, (५) गुरु छन्द, (६) नेमिनाथ छन्द ।

१२. आनन्दघन—इनका स्थान जैन कवियों में अप्रतिम है । इनकी दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—चौबीसी और बहत्तरी । चौबीसी गुजराती में है जिसमें चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति है ।

१३. उदयराज जती (सं० १६६७)—रचनाएँ—भजन छत्तीसी, चौबीस जिन सवैया ।

१४. कल्याण कीर्ति—जीराबली पार्श्वनाथ स्तवन, नवग्रह स्तवन, तीर्थंकर विनती, आदीश्वर बधावा ।

१५. कनककीर्ति—मेघकुमार गीत, जिनराज-स्तुति, श्रीपाल स्तुति, पार्श्वनाथ की आरती, विनती ।

१६. कुमुदचन्द्र—मुनिसुव्रत विनती, आदीश्वर विनती, पार्श्वनाथ विनती, त्रेपनप्रिया विनती, जन्म-कल्याणक गीत, शील गीत आदि ।

१७. कुशल लाभ—पूज्यवाहणगीतम् ।

१८. गुणसागर—शान्तिनाथ स्तवन, पार्श्वजिन-स्तवन ।

१९. जयकीर्ति—महिम्न स्तवन ।

२०. पाण्डे जिनदास—जिन चैत्यालय पूजा (संस्कृत) एवं मुनीश्वरों की जयमाल ।

२१. नरेन्द्र कीर्ति—बीस तीर्थंकर पूजा (संस्कृत), पद्मावती पूजा (संस्कृत), ढाल-मंगल की (हिन्दी) ।

२२. ब्रह्मगुलाल—समवसरण स्तोत्र ।

२३. बनारसीदास—'बनारसी विलास' में इनके ९ स्तोत्र संगृहीत हैं ।

२४. भगवतीदास—ये भैया भगवतीदास से भिन्न हैं । इनकी २३ रचनाएँ प्राप्त हैं जिनमें स्तोत्र सम्बन्धी निम्नलिखित रचनाएँ हैं—वीर जिनेन्द्र गीत, आदिनाथ स्तवन, शान्तिनाथ स्तवन ।

२५. रामचन्द्र—इनके द्वारा रचित तीन स्तवन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—बीकानेर आदिनाथ स्तवन, सम्मेद शिखर स्तवन और दशपंचक्खाण ।

२६. भट्टारक शुभचन्द्र—संस्कृत ग्रन्थों के अतिरिक्त हिन्दी में लिखे इनके स्तोत्र ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । जैसे—चतुर्विंशति स्तुति, अष्टाह्निकागीत, क्षेत्रपाल-गीत, महावीर छन्द, आरती, गुरु छन्द आदि ।

२७. मुनि सकलकीर्ति—पार्श्वनाथाष्टक ।

२८. पाण्डे रूपचन्द्र—इनके भी कई स्त्रोत प्रसिद्ध हैं ।

२९. सहजकीर्ति—प्राती, जिनराजसूरि गीत, साधु कीर्ति, जैसलमेर चैत्य प्रवाडी ।

३०. सुमतिकीर्ति—जिनवरस्वामी विनती, जिन विनती, क्षेत्रपाल पूजा ।

३१. हर्षकीर्ति—जिनभक्ति, बीस तीर्थंकर जकड़ी, पार्श्वनाथ पूजा, बीस विहरमाण पूजा ।

३२. पं० हीरानन्द—समवशरण स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र ।

३३. मुनि हेमसिद्ध—आदिनाथ गीत ।

३४. द्यानतराय—स्वयम्भू स्तोत्र तथा 'धर्म विलास' में निबद्ध दस पूजा ग्रन्थ ।

३५. हेमराज—भक्तामर स्तोत्र ।

पाण्डेय हेमराज, अखयराज और धनदास ने 'भक्तामर स्तोत्र' का पद्यानुवाद किया है । हेमराज का यह अनुवाद सरल और स्पष्ट तो है ही उसके मूलभाव को भी स्पष्ट करता है । कुमुदचन्द्र कृत 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र' बहुत ही लोकप्रिय स्तोत्र रहा है और इसी कारण हिन्दी के अनेक कवि इसकी ओर आकृष्ट हुए हैं । इसके अनुवादकर्त्ताओं में महाकवि बनारसीदास, अखयराज, भेलीराम आदि अग्रगण्य हैं । महाकवि बनारसीदास का अनुवाद सोलह मात्रा के चौपाई छन्द में है । भक्त संस्कृत मूल स्तोत्र से जो आनन्द प्राप्त करता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वही आनन्द बनारसीदास के अनुवाद से एक हिन्दी-भाषी को उपलब्ध होता है। जैसे—

सुमन वृष्टि जो सुरकरहिं, हेठ बीट मुख सोहिं।
ज्यों तुम सेवत सुमनजन, बन्ध अधोमुख होहिं॥
कहहिं सार तिहुँ लोक को, ये सुर चामर दोय।
भाव सहित जो जिन नमें, तसुगति ऊरध होय॥

—क्रम संख्या २१, २३

'एकीभाव स्तोत्र' हिन्दी-कवियों को बहुत प्रिय रहा है। इसका अनुवाद पं० हीरानन्द, अखयराज, भूधरदास, जगजीवन और द्यानतराय ने प्रस्तुत किया है। 'एकीभाव' के चौदहवें श्लोक का अनुवाद करते हुए द्यानतराय लिखते हैं—

मुकति पन्थ अघ तम बहुभर्‌यौ,
गढे कलेस विसम विसतर्‌यौ॥
सुख सौं सिवपद पहुँचे कोय,
जो तुम वच मन दीप न होय॥

ध्यान देने की बात यह है कि जहाँ वादिराज ने 'रत्नदीप' लिखा है वहाँ द्यानतराय ने मात्र 'दीप' ही रहने दिया है। अवश्य 'मन' शब्द अधिक है। घोर तमिस्रा के बीच 'दीप' की तुलना में 'रत्नदीप' अधिक सटीक एवं सार्थक है।

इसी पद्य को भूधरदास ने अधिक कुशलता से ग्रहण किया है। उन्होंने 'मणिदीप' को ज्यों का त्यों रहने दिया है।

सिवपुर केरो पन्थ पाप तम सों अति छायो।
दुःख सरूप बहु कूप खण्ड सों बिकट बतायो॥
स्वामी सुख सों तहाँ कौन जन मारग लागें।
प्रभु प्रवचन मणि दीप जोन के आगें आगें॥

'विषापहार स्तोत्र' का अनुवाद विद्यासागर ने किया है। कवि का यह अनुवाद बड़ा सटीक एवं सार्थक हुआ है। इसी प्रकार भूपाल कवि कृत 'चतुर्विंशति स्तोत्र' का अनुवाद भी सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया गया है। दोहा-चौपाई शैली में कवि ने मूल भावों की पूर्णतः रक्षा की है।

इन अनूदित स्तोत्रों के अतिरिक्त मौलिक स्तोत्रों की रचना भी प्रचुर परिमाण में ही है। इस प्रकार जैन-स्तोत्र-साहित्य गुण एवं परिमाण, दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है और एक स्वतन्त्र शोध की अपेक्षा रखता है।

□

नोट—लेख में वर्णित अनेक धारणाएँ लेखक की अपनी स्वतन्त्र हैं। श्वेताम्बर परम्परा की धारणाओं से भिन्नता भी है, अतः लेखक एवं पाठक से निवेदन है, वे इस विषय पर सन्तुलित चिन्तन करें।

—सम्पादक

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित् सह॥

—मनुस्मृति ४/१३९

मानव के लिए उचित है कि सदा ही भद्र-मधुर शब्दों का प्रयोग करे। अच्छा है, उचित है—सामान्य रूप से ऐसा ही कहना उचित है। किसी के भी साथ व्यर्थ की शत्रुता अथवा विवाद करना उचित नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org